THE TIMES OF INDIA

Date: 17-08-26

Cry Me A River

In retreat, Rhine and Danube are exposing Europe's past. But also a future where the world's parched

TOI Editorials

Some crises are 'best' seen from space, others up close and personal. Europe's drying rivers look scary both ways. Satellites show dramatically shrunk waterways, things feel extraordinary at individual eye level too. People are walking where they kayaked all their life. Record low water levels have laid bare sunken Nazi ships, an unexploded 700kg British bomb, centuries-old "hunger stones", even the remains of an ancient mammoth. As if the retreating rivers are exposing Europe's past, alongside a frightening future.

Rhine, Danube, Elbe…are also shipping lanes, industrial cooling systems, agri grid, sources of drinking water and energy. They are continental infra. As Europe's relics meet a harsh sun, so do the assumptions beneath its prosperity. Turns out rainfall, rivers, groundwater, fertile fields…are not permanent geography but variable ecological phenomena. When world leadership pretty much binned the 1.5°C goalpost to head towards 2°C above pre-industrial levels, it was never going to be without consequences. And for all the fear factor of dried rivers, the groundwater story that people cannot see may be worse. Obviously, none of this is a Europe-only problem.

It's no longer about one drought year, but about grim goings-on even in good rain years. University College London scientists have used satellite data to show that vast swathes of Europe's water reserves have gotten depleted between 2002-24. Similar red flags abound in India. 2025's Dynamic Groundwater Resources Assessment found the national extraction rate at 61% of assessed recharge. But there are huge regional differences, where many areas are beyond the 70% threshold, considered a critical limit for sustainable usage. A Punjab Agricultural University study reports, tellingly, that between 1998-2005 the state's average pre-monsoon water table has dropped from 7.8m below ground level to 21m.

A do-nothing lot are always harking on the cost of solutions. Consider that many of India's water-parched cities are coastal. So, investing in desalination now, no matter how expensive, like Chennai is doing, makes more sense than leaving it to zero-water day. Where we should get serious about counting costs is how a "development" project impacts the water ecosystem, and greenlight it only if it comes out blue at the end. Europe to India, we can no longer assume that any of our water supply is "permanent". That means we have to effectively build a second water system to keep the one that Nature gave us alive. We have to "make" water from the sea, sewage, wastewater. And when we get rain, we have to catch it before it runs away.

THE ECONOMIC TIMES

Date: 17-08-26

Public Education Needs Public Money

ET Editorials

Students protesting in Ranchi, and before that in Delhi and other parts of the country, demanding accountability are highlighting a deeper malaise: education is not receiving the resources it deserves. The data bears them out. Unesco's assessment of progress towards SDG 4 shows that India's public spending on education has remained stuck at around 4.1% of GDP over the past decade — barely above the UN benchmark of 4% and well short of the 6% target successive governments have repeatedly pledged to achieve. Education's share of total public expenditure stands at 14.2%, below the recommended benchmark of 15%, and down from 15.7% in 2015.

Rollout of Sarva Shiksha Abhiyan and infrastructure required under Right to Education Act lifted public spending in the early 2000s. Once that phase ended, states took on a larger share of funding, much of which is now consumed by salaries rather than quality improvements. Chronic underfunding, combined with private schools' English-medium appeal and lower teacher absenteeism, hastened the shift to private education. Today, nearly 40% of students attend private unaided schools while declining enrolment has forced the closure or merger of thousands of government schools.

India needs to spend more on education to improve the quality of existing state schools. This will require GoI, states and local governments to work in unison, translating the vision of National Education Policy (NEP) 2020 into reality through higher public spending, stronger accountability, better teacher training, focus on learning outcomes and greater investment in innovation. Spending more on education is an investment in long-term growth, one that only the public exchequer can finance with the patience it demands.

बिज़नेस स्टैंडर्ड

Date: 17-08-26

आर्टिफिशल इंटेलिजेंस की चर्चा ज्यादा, नतीजे कम

मिहिर शर्मा

पिछले तीन वर्षों में आर्टिफिशल इंटेलिजेंस (एआई) से जुड़ा कारोबार तकनीकी क्षेत्र पर हावी हो गया है। दक्षिण कोरिया के शेयर बाजार के उतार-चढ़ाव से पता चलता है कि इसने वित्तीय प्रवाह को भी काफी हद तक बदल दिया है। पिछले वर्ष अमेरिका में आर्थिक वृद्धि का लगभग पूरा हिस्सा एआई के बुनियादी ढांचे में निवेश से आया। वे विशाल कंपनियां, जिनकी वर्षों से इस बात के लिए आलोचना की जाती रही थी कि वे बहुत अधिक नकदी बचाकर रखती हैं, अब बेतहाशा खर्च कर रही हैं।

यह सब इस धारणा पर आधारित है कि एआई मानव के काम करने, कमाने और जीने के तरीके में क्रांतिकारी बदलाव लाएगी। फिर भी, ऐसे समय की कल्पना करना असंभव है जब किसी तकनीक का वादा, जैसा कि उसके समर्थकों द्वारा बताया गया है, लोगों के वास्तविक अनुभव से इतना अलग रहा हो। हम लगातार सुनते आ रहे हैं कि एआई मानव जीवन के हर पहलू को बदलने के करीब है, फिर भी अधिकांश लोगों के लिए यह सीमित सुविधाओं और छिपे हुए एल्गोरिदम का एक संग्रह मात्र है।

कुछ विशिष्ट और सीमित क्षेत्रों में, इस तकनीक की क्षमता पूरी तरह से सामने आ रही है। बुनियादी कोडिंग कार्यों को अब पूरी तरह से स्वचालित किया जा सकता है। ऐसा लगता है कि अब आपको कोई प्रोग्रामिंग भाषा जानने की आवश्यकता नहीं है, उदाहरण के लिए, आप स्वयं ही एक साधारण ऐप बना सकते हैं। लेकिन, सच कहें तो, कितने लोगों को ऐप बनाने की आवश्यकता होती है ?

अधिकांश उपयोगकर्ता वास्तव में एआई को या तो तेजी से अनुपयोगी होते जा रहे सर्च इंजनों के विकल्प के रूप में देखते हैं, या फिर जो लोग इस तकनीक से गहराई से जुड़े हुए हैं, वे इसे एक आभासी साथी के रूप में देखते हैं। यह सच है कि बाद वाला पहलू कुछ लोगों के लिए चिंताजनक रूप ले चुका है, लेकिन यह अभी तक ऐसी बीमारी नहीं है जो पूरे समाज को प्रभावित कर रही हो ।

इस बीच, समर्थकों के अनुसार, पिछले छह महीनों में एआई ने अभूतपूर्व प्रगति की है। 'एजेंट' का विकास, जो आभासी दुनिया या आपके डेस्कटॉप पर चल सकते हैं, और माना जाता है कि वे आपके स्थान पर अधिक जटिल और परस्पर जुड़े कार्यों को अंजाम देते हैं, ऐसी ही एक प्रगति है। कंप्यूटरों द्वारा कंप्यूटरों का उपयोग इस क्षेत्र में एक बड़ा कदम है, लेकिन इसने हममें से अधिकांश के एआई के उपयोग के तरीके में शायद ही कोई बदलाव किया है, जो 2003 से लगभग अपरिवर्तित है। एक मॉडल काफी अधिक शक्तिशाली हो सकता है, जिसमें कहीं अधिक सेमीकंडक्टर, ऊर्जा, जल और अन्य संसाधनों का उपयोग होता है, फिर भी अधिकांश लोगों के लिए उपयोगकर्ता के अनुभव में कोई खास बदलाव नहीं आता है।

उदाहरण के लिए, एजेंटिक एआई से व्यक्तिगत डिजिटल सहायकों को संभव बनाने की उम्मीद थी। सैद्धांतिक रूप से यह आपके इनबॉक्स और आपके जीवन को व्यवस्थित करने, आपके कार्यों पर नजर रखने और आपके डिजिटल कामों को पूरा करने में सक्षम होना चाहिए। लेकिन, जिन कंपनियों ने इस टूल के लिए भुगतान किया है, उनमें भी यह स्पष्ट हो गया है कि उनके बहुत कम कर्मचारी इन सबसे उन्नत सुविधाओं का उपयोग करते हैं। प्राइसवाटरहाउसकूपर्स द्वारा किए गए नवीनतम वैश्विक कार्यबल सर्वेक्षण के अनुसार, केवल 14 फीसदी कर्मचारी जेनरेटिव एआई का दैनिक उपयोग कर रहे थे, और केवल 6 फीसदी एजेंटिक संस्करण का उपयोग कर रहे थे।

कई उपयोगकर्ता- केंद्रित क्षेत्रों में एआई अभी तक अपनी अपेक्षित क्षमता के अनुरूप प्रदर्शन नहीं कर रही है। स्वचालित कारें अभी सर्वव्यापी नहीं हैं। चिकित्सा के क्षेत्र में किसी भी विशिष्ट नैदानिक गतिविधि के लिए इसका उपयोग काफी कम रहा है। इसने अभी तक कक्षाओं या दूरस्थ शिक्षण में भी अपनी जगह नहीं बनाई है।

इनमें से कुछ क्षेत्रों में, बेशक यह पर्दे के पीछे रहकर सामने से कहीं बेहतर काम कर रही है। चिकित्सा के क्षेत्र में इसने दवा खोज में जबरदस्त सुधार किया है। शिक्षा जगत के उच्चतम स्तर पर, इसने गणित की उन समस्याओं को हल करना शुरू कर दिया है जिन्होंने वर्षों से दुनिया के महानतम विद्वानों को उलझा रखा था । यूट्यूब और स्पॉटिफाई घटिया गुणवत्ता वाली एआई- जनित सामग्री से भरे पड़े हैं, जो वास्तविक रचनाकारों के लिए खतरा बन रही है। शुरुआती प्रौद्योगिकियों के मुकाबले एआई ने अधिक वादे किए हैं और कम परिणाम दिए हैं।

इसके समर्थकों का यह अनुमान शायद अभी भी सही हो कि दीर्घकाल में इसका परिवर्तनकारी प्रभाव पड़ेगा। लेकिन हम अभी उस मुकाम तक नहीं पहुंचे हैं। क्या यह पूरी तरह से अनुमानित नहीं है कि कोडर्स की एक संकीर्ण दुनिया द्वारा विकसित और उनके लिए बनाई गई एक तकनीक ने उनकी दुनिया को तो बदल दिया है, लेकिन हम सभी जिस दुनिया में रहते हैं, उसमें इसे अपनाने में संघर्ष करना पड़ रहा है ? यह स्पष्ट है कि असली मुश्किल काम एल्गोरिद्म विकसित करना नहीं है। निर्णायक बात यह होगी कि इन्हें कितनी कुशलता से लागू और प्रसारित किया जाता है, और मुझे नहीं लगता कि इसके लिए बड़ी तकनीकी कंपनियों के पास कोई समाधान या तरीका है।